ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(1): 464-466
www.allresearchjournal.com
Received: 09-11-2020
Accepted: 23-12-2020

डॉ. संतोष कुमार सिंह
सहायक आचार्य, हिंदी–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. संतोष कुमार सिंह
सहायक आचार्य, हिंदी–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

नागार्जुन की काव्यभाषा

डॉ. संतोष कुमार सिंह

प्रस्तावना

हिंदी के आधुनिक कबीर कहे जाने वाले बाबा नागार्जुन की काव्यभाषा के संदर्भ में बात करते हुए मुझे कबीरदास जी का वह कथन याद आता हैं जिसमें वे कहते हैं ''संस्कीरत है कूप जल भाखा बहता नीर' अर्थात् भाषा को बहते हुए जल की तरह होना चाहिए। सहज होना चाहिए। अकृत्रिम होना चाहिए। जनकवि नागार्जुन की काव्यभाषा कुछ ऐसी ही है– अकृत्रिम, सहज और गतिशील कहीं भी जड़ या स्थिर नहीं। काव्यभाषा के संदर्भ में मान्यता है कि इसका आधार सामान्य भाषा ही होती हैं, लेकिन रचनाकार उसमें अपने अनुभव और व्यक्तित्व का प्रयोग करतेह उए उसे विशिष्ट बनाता है। रचनाकार की व्यक्तिगत रूचि, दृष्टिकोण तथा उसका स्वंय का व्यक्तित्व काफी हद तक उसकी काव्यभाषा के निर्माण में योग देता है। नागार्जुन की निष्ठा और प्रतिबद्धता, इसमें कोई संदेह नहीं कि जन के प्रगति रही है, अतः उनकी काव्यभाषा भी जन के अधिक निकट है। वे काव्यभाषा के आभिजात्य को तोड़ते हैं। डॉ. खगेंद्र ठाकुर का कहना हैं कि– ''हिन्दी कविता की भाषा को अभिजातवर्गीय रूप रंग से मुक्त करने का श्रेय सबसे पहले जिन लोगों को हैं उनमें नागार्जुन आगे हैं''। लब्धप्रतिष्ठ आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा भी कहते हैं ''हिंदी भाषी प्रदेश के किसान और मजदूर किसक तरह की भाषा आसानीसे समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है। किसान अपने गाँव या घर में अपनी जनपदीय बोली का प्रयोग करते हैं, शहर में, अपने राजनीतिक सांस्कृतिक जीवन में कचहरी, अदालत और शिक्षा में वे खड़ी बोली का व्यवहार करते हैं। विभिन्न जनपदों से आने वाले मजदूर जब शहरों में केंद्रित होते हैं, तब वे किसानों की अपेक्षा खड़ी बोली का व्यवहार और भी अधिक करते हैं। जिन रचनाओं में मालवे से लेकर मिथिला तक विभिन्न जनपदों के श्रमिकों की राजनैतिक चेतना अपने प्रखर रूप में प्रकट होती हैं, वे खड़ी बोली में हैं।

नागार्जुन की काव्यभाषा की चर्चा के प्रसंग में उनकी कुछ कविताओं की उल्लेख आवश्यक है। नागार्जुन की बहुचर्चित कविता है– 'अकाल और उसके बाद' जो सन् 1959 में प्रकाशित उनके दूसरे कविता संकलन 'सतरंगे पंखों वाली' में संगृहीत है। कविता इस प्रकार है–

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आये घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौन ने खुजलाई पाँखे कई दिनों के बाद।

यह कविता सिर्फ आठ पंक्तियों की है, लेकिन इतने कम शब्दों में अकाल का जैसाई जीवंत वर्णन बाबा नागार्जुन ने किया है वह अपनी व्यंजना में अद्भुत है। भाषा–वैभव की दृष्टि से इस कविता में जो आवृत्ति की गई है, वह उल्लेखनीय है। पहले बंद में कई दिनों तक की और दूसरे बंद में कई दिनों के बाद की। इसके अतिरिक्त इस कविता में उन्होंने बोल–चाल की भाषा और मुहावरे का सुंदर प्रयोग किया है। भीत, गश्त और शिकस्त, चूल्हा और चक्की आदि। हालत शिकस्त होना– हिन्दी का आम जन में प्रचलित मुहावरा है जो किसी की भी दयनीय स्थिति को व्यक्त करता है।

नागार्जुन की अत्यंत प्रसिद्ध कविता है–'बादल को धिरते देखा है'

अमल धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है।
छोटे–छोटे मौती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा हैं,
बादल को घिरते देखा हैं।

यह नागार्जुन की थोड़ी भिन्न–प्रकृति की कविता है। प्रकृति–चित्रण है– तात्समिक शब्दावली में। काव्यभाषा की दृष्टि से इस कविता में देखा है क्रिया का प्रयोग विशिष्ट स्थान रखता है। कबीर जिसको 'आँखिन देखी' और 'अनभै साँचा' कहते हैं, यहाँ जोर उसी पर है। अर्थात् जिसका स्वंय साक्षात्कार किया, स्वंय अपनी आँखो से देखा और जिसका स्वंय अनुभव किया। इस कविता में आगे..... होने वाली क्रियाएँ गिरते देखा है, तिरहे देखा है, चिढ़ते देखा है, जिढ़ते देखा है फिरते देखा है– से स्पष्ट है कि कवि का यह प्रकृति–पर्यवेक्षण अत्यधिक सूक्ष्म और प्रकृति के प्रति गहरे राग–बोध से सम्पृक्त है। नागार्जुन की काव्यभाषा के इसी वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध आलोचक डॉ० नामवर सिंह कहते हैं– ''कविता में रूप सम्बंधी जितने प्रयोग अकेले नागार्जुन ने किये हैं, उतने शायद ही किसी ने किये हों। कविता की उठान तो कोई नागार्जुन से सीखे और नाटकीयता में तो वे लाजवाब ही हैं। जैसी सिद्धि छंदों में, वैसा ही अधिकार बेछंद या मुक्त छंद की कविता पर। और भाषा में भी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृत की संस्कारी पदावली तक स्तर हैं कि कोई भी अभिभूत हो सकता है। तुलसीदास और निराला के बाद कविता में हिन्दी भाषा की विविधता और समृद्धि का ऐसा सर्जनात्मक संयोग नागार्जुन में दिखाई पड़ता है।''

नागार्जुन की एक अन्य कविता 'चंदू मैंने सपना देखा' भी उल्लेखनीय है।

चंदू, मैंने देखा, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा
चंदू मैंने सपना देखा, अमुआ से हूँ पटना लौटा
चंदू, मैंने सपना देखा, तुम्हें खोजते बद्री बाबू
चंदू, मैंने सपना देखा, खेलकूद में ही बेकाबू।

'चंदू मैंने सपना देखा' जैसी साधारण प्रतीत होने वाली पंक्ति की आक्ति से कवि ने अर्थ की सघनता को मूर्त्त करने का प्रयास किया है।
बबा नागार्जुन की एक कविता है– 'मास्टर' जो प्राइमरी के अध्यापक दुखरन की व्यथा की कथा कहती है। कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

घुन–खाए शहतीरों पर की बाराखड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट–मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते रहते इसी तरह आदम के साँचे।

यह कविता सन् 1953 की लिखी हुई कविता है और पूरी कविता अध्यापकों की दयनीय स्थिति को व्यक्त करती है। कविता में अनेक तद्भव और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। भीत, बिसतुइया आदि तद्भव शब्द हैं– दीवार और छिपकली के लिए। नागार्जुन मैथिली भाषा में छिपकली के लिए क्या शब्द प्रयुक्त होता हैं, किन्तु बचपन में मेरे जैसे अवधी बोली के बच्च छिपकली के लिए 'बिसतुइया' शब्द का प्रयोग स्वाभाविक रू॰ से किया करते थे। कहना मैं यहाँ यह चाह रहा हूँ कि नागार्जुन के यहाँ कहीं कुछ त्याज्य नहीं हैं, उसमें सभी की समावेशिता है। शायद इसी को ध्यान में रखते हुए समकालीन कविता के एक प्रमुख कवि राजेश जोशी ने नागार्जुन की काव्यभाषा के संदर्भ में कहा है– 'उनकी भाषा बहुत फैली हुई भाषा है, बहुत सघन और संकुल भी तथा बहुत उन्मुक्त भी। उसमें बोलियों, संस्कृत, उर्दू अंग्रेजी के अनेक शब्द हैं। ये वे शब्द हैं जो विभिन्न अंचलों में बोली जाने वाली खड़ी बोली में घुल–मिल गये हैं। इस अर्थ में नागार्जुन की रचना–भाषा बेहद लचीली और समावेशी है। उसके तल में बोलयिों की सहस्त्र धारा का अंतरप्रवाह मौजूद है। वह निरंतर विस्तृत और समृद्ध होती है। इसलिए वह कहीं–कहीं ऊबड़–खाबड़ तो हो सकती हैं, लेकिन जड़ाऊ पच्चीकारी की सीमित और जड़ भाषा वह नहीं हैं, तनिक भी नहीं।''

नागार्जुन की एक कविता है– 'शासन की बंदूक' दोहे के रूप में लिखी हुई। पाँच दोहे हैं। अंतिम दोहा है–

जली ठूँठ पर बैठ कर गई कोकिला कूक।
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।

इस दोहे में शासन के दमन की व्यर्थता और जनता की विजय में विश्वास प्रतीक के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ है। इस दोहे में बाल न बाँका कर सके मुहावरे का बहुत सुंदर प्रयोग कवि ने किया हैं। 'आए दिन बहार के' कविता की पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं–

'स्वेत–स्याम–रतनार' अँखियाँ निहार के
सिंडकेटी प्रभुओं की पग–धूर झार के
लौटे हैं दिल्ली से टिकट मार के
खिले है दाँत ज्यों दाने अनार के
आए दिन बहार के!

यह नागार्जुन की व्यंग कविता है। व्यंग्य है कांग्रेस के टिकट पाकर दिल्ली से लौटे नेताओं पर। रीतिकाल की कोई नायिका भी अपने प्रियतम को देखकर उतना प्रसन्न न होगी जितना कि ये नेता। रीतिकालीन संदर्भ व्यंग्य को ऊँचाई प्रदान करता है। 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' नागार्जुन की एक अन्य व्यंग्य कविता है।

आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहर लाल की
रफू करेंगे फटे–पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहर लाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी।''

इस कविता में संयत भाषा के माध्यम से कवि ने व्यंग्य किया है। प्रसंग है महारानी एलिजाबेथ के भारत आगमन के उपलक्ष्य में कॉमनबेल्थ के प्रधान के रूप में उनके स्वागत का।
अंत में 'यात्री' नागार्जुन की काव्यभाषा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उनके काव्यरूपी रथ पर विभिन्न बोली–बानी, अंचल के शब्दों ने तत्सम, तद्भव देशज आदि ने यात्रा की है। ''भाषा को पकड़ने में उनके काम बहुत चौकन्ने हैं और स्मृति विलक्षण। इसलिए उनकी भाषा में सिर्फ मिथिला की माटी और गंगा तट का संगीत ही नहीं है, क्षिपा के किनारे की मालवी और बेतवा तट की बुंदेली ठसक भी सुनाई पड़ती है।'' नागार्जुन की की काव्यभाषा के बीच कविता को सीधे ले जाने के लिए प्रखर लोक–संवेदना और जनसंस्कृति के इस सबसे बड़े कवि ने जनभाषा और साहित्यिक भाषा का भेद मिटा कर जो दुर्लभ काव्य बोध प्रमाणित किया, उसका मूल्यांकन करते समय तुलसी भी याअ आयेंगे और कबीर भी।'' नागार्जुन की काव्यभाषा की एक

महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने प्रसंग और विषयवस्तु के अनुसार शब्दों का प्रयोग किया हैं। (कहीं भी कोई भी शब्द फालतू था अतिरिक्त नहीं) किसी ने कहा भी हैं, शायद विटगिंगस्टाइन के कि–शब्दों का अर्थ उनके प्रयोग पर निर्भर करता हैं– इसमें कोई संदेह नहीं कि नागार्जुन ने अपने काव्य में शब्दों का अत्यंत कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है। बाबा नागार्जुन ने जिस प्रकार विविध विषयों पर अपनी लेखनी चलाई उसी प्रकार उनके यहाँ भाषिक प्रयोग में यही वैविध्य परिलक्षित होता है। इसी बात को रेखांकित करते हुए आलोचक खगेंद्र ठाकुर ने लिखा है– ''वे किसी भी स्तर की भाषा को काव्यात्मक और संवेदनात्मक स्वर देने समर्थ हैं। 'अमल धवल गिरि के शिखरों' से लेकर चूल्हा–चक्की तक, गाँधी छीपी से लेकर छात्रों, तस्करों एवं मजदूरों के खून तक, आदमखोर सेठों और जमींदारों से लेकर किसानों की सूखी अंतड़ी तक जो भाषा काम–काज में आजी है, उसे ही नागार्जुन ने काव्यभाषा की महिमा प्रदान की हैं।''

सन्दर्भ

1. नागार्जुनः रचना प्रसंग और दृष्टि–सं० रामनिहार गुंजन, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2002 में संकलित लेख 'नागार्जुन की काव्यभाषा' पृ0 117
2. परिषद् पत्रिका– बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, वर्ष 38, अंक 1–4, अप्रैल 98 से मार्च 99, नागार्जुन अंक, प्रधान संपादक – डॉ० रामधारी सिंह दिवाकर में संकलित लेख–नयी कविता के संदर्भ में नागार्जुन की काव्यकला', पृ10
3. नागार्जुनः प्रतिनिधि कविताएँ–सं0 डॉ0 नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1988 पृ0 98
4. वही, पृ0 63
5. नागार्जुनः प्रतिनिधि कविताएँ, भूमिका से, पृ0 9
6. वही, पृ0 46
7. वही, पृ0 98
8. राजेश जोशी – एक कविता की नोटबुक, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 24, पृ0 41
9. नागार्जुनः प्रतिनिधि कविताएँ, पृ0 105
10. वही, पृ0 104
11. नागार्जुनः प्रतिनिधि कविताएँ, पृ0 101
12. राजेश जोशी, एक कवि की नोटबुक, पृ0 41
13. परमानंद श्रीवास्तव, कविता का अर्थात् वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम वाणी संस्करण– 2008, पृ0 77
14. नागार्जुनः रचना प्रसंग और दृष्टि– सं0 रामनिहाल गुंजन, पृ0 128